# प्राकृत : विभिन्न भेद और लक्षण

□ **श्री सुभाष कोठारी**, द्वारा : प्राकृत व जैन विद्या विभाग, उदयपुर विश्वविद्यालय, उदयपुर

प्राकृत भाषा की गणना मध्य भारतीय आर्य भाषा में की जाती है और इसका विकास वैदिक, संस्कृत व छान्दस भाषा से माना जाता है। अतः प्राकृत की प्रकृति वैदिक भाषा से मिलती-जुलती है।[1] स्वर भक्ति के प्रयोग प्राकृत व छान्दस दोनों भाषा में समान रूप से पाये जाते हैं। अतः यह मानना उचित व तर्कसंगत मालूम होता है कि छान्दस भाषा से प्राकृत की उत्पत्ति हुई, जो उस समय की जनभाषा रही होगी। लौकिक संस्कृत व संस्कृत भाषा भी छान्दस से विकसित हुई है। अतः विकास की दृष्टि से संस्कृत व प्राकृत दोनों सहोदरा है।

प्राचीन भारत की मूल भाषा या बोली का क्या रूप था यह तो स्पष्ट नहीं है पर आर्यों की अपनी एक भाषा थी। उस भाषा पर अन्य जातियों का भी प्रभाव पड़ा, उससे छान्दस भाषा विकसित हुई। इस छान्दस भाषा को विद्वानों ने पद, वाक्य, ध्वनि व अर्थ इन चारों अंगों को विशेष अनुशासनों में आबद्ध कर दिया। फलतः छान्दस का मौलिक विकसित रूप प्राकृत कहलाया। साहित्य निबद्ध प्राकृत का विकास मध्य भारतीय आर्य भाषा से माना जाता है। बुद्ध व महावीर के बाद इसका एक नया अध्याय प्रारम्भ हुआ। शिष्टता के घेरे को तोड़कर इतनी तेजी से यह आगे बढ़ी कि संस्कृत भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकी। संस्कृत में जनउपयोगी विषयों का विवेचन प्राकृत का ही फल है। अतः समय व सीमा की दृष्टि से प्राकृत का विकासकाल मध्यकाल माना जाता है।

**प्राकृत शब्द की व्युत्पत्ति**—प्राकृत भाषा का बोध कराने वाला 'प्राकृत' शब्द प्रकृति से बना है। इस प्रकृति शब्द के सम्बन्ध में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। उनका यह मत है कि प्रकृति की आधारभूत भाषा संस्कृत है और इसी संस्कृत से प्राकृत भाषा निकली है। हेमचन्द्र ने कहा है कि "**प्रकृतिः संस्कृतम् तत्र भवम् ततं आगतं वा प्राकृतम**" अर्थात् प्रकृति संस्कृत है और उससे आयी हुई भाषा प्राकृत है। इसी अर्थ का समर्थन मार्कण्डेय द्वारा भी होता है।[2] लक्ष्मीधर अपनी षड्भाषाचन्द्रिका में लिखते हैं—"**प्रकृते संस्कृतायास्तु विकृतिः प्राकृता मता**"[3]। दशरूपक के टीकाकार धनिक ने प्राकृत की व्याख्या करते हुए कहा है कि "**प्राकृतेः आगतं प्राकृतम्। प्रकृतिः संस्कृतम्**" यही मत कर्पूरमंजरी के टीकाकार वासुदेव[4], वाग्भटालंकार के टीकाकार सिंहदेवगणी, प्राकृत शब्द प्रदीपिका के रचयिता नरसिंह का भी है। नमि साधु सामान्य लोगों में व्याकरण के नियमों आदि से रहित सहज वचन व्यापार को प्राकृत का आधार मानते हैं।[5]

उक्त व्युत्पत्तियों की विशेष व्याख्या करने पर निम्न फलितार्थ प्रस्तुत होते हैं—

(अ) प्राकृत भाषा की उत्पत्ति संस्कृत से नहीं हुई किन्तु "प्रकृतिः संस्कृतम्" का अर्थ है कि संस्कृत भाषा के द्वारा प्राकृत भाषा को सीखने का यत्न करना। इसी आशय से हेमचन्द्र ने प्राकृत को संस्कृत की योनि कहा है।

---

१. डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री, प्राकृत भाषा व साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ८
२. प्रकृतिः संस्कृतम् तत्र भवं प्राकृतमुच्यते —प्राकृतसर्वस्व ९।९१
३. पाइअ सद्दमहण्णवो, पृ० २३
४. प्राकृतस्य तु सर्वमते संस्कृतयोनिः —संजीवनी टीका, १।२१
५. भाषा विज्ञान, डॉ० भोलानाथ तिवारी पृ० १७३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(ब) संस्कृत व प्राकृत के बीच किसी प्रकार का उत्कृष्ट व जघन्य भाव नहीं है। दोनों की उत्पत्ति छान्दस भाषा से हुई।

(स) उच्चारण भेद से इनमें हल्का अन्तर आ जाता है परन्तु इतना भी अन्तर नहीं कि दोनों विपरीत लगने लगें।

**प्राकृत के भेद**—

## १. पालि

हीनयान बौद्धों के 'धर्म ग्रन्थों' की भाषा को पालि कहते हैं। यह भी एक तरह की प्राकृत है। पालि शब्द के विषय में कई विद्वानों का मत है कि पालि शब्द 'पंक्ति' से बना है जिसका अर्थ है श्रेणी, परन्तु अन्य विद्वानों के अनुसार पालि शब्द पल्लि से बना है और पल्लि एक प्राकृत शब्द है। इसका उल्लेख प्राचीन जैन ग्रन्थ विपाकसूत्र में भी आया है जिसका अर्थ होता है ग्राम या गाँव। अतः पालि शब्द का अर्थ ग्राम में बोली जाने वाली भाषा से होता है। यही कारण कि प्रसिद्ध विचारक मनीषी गायगर ने इसे आर्ष प्राकृत कहा है।

पालि शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। इसका प्राचीनतम प्रयोग चौथी शताब्दी में लिखित ग्रन्थ दीपवंश लंका में हुआ था। वहाँ इसका अर्थ बुद्ध वचन है। बौद्ध लोग इसे मागधी कहते हैं, अतः इसका उत्पत्ति स्थल मगध है, परन्तु इसका मागधी से कोई सम्बन्ध नहीं है। डॉ० कोनो इसे पैशाची के सदृश्य मानते हैं। उनके मत में पैशाची का उत्पत्ति स्थल विंध्याचल का दक्षिण प्रदेश है। परन्तु पालि भाषा अशोक के गुजरात प्रदेश स्थित गिरनार के शिलालेख के अनुरूप होने से कारण यह मगध में ही नहीं अपितु भारतवर्ष के पश्चिमी प्रान्त में उत्पन्न हुई व वहाँ से सिंहल प्रदेश में लायी गयी होगी और यही तर्क विशेष युक्तिसंगत प्रतीत होता है।

**लक्षण**—(१) पालि में श, ष, व स के स्थान पर केवल दन्त्य स ही प्रयुक्त होता है।

२—पालि में र एवं ल दोनों ही ध्वनियाँ विद्यमान हैं।

३—पुल्लिग व नपुंसकलिंग के कर्त्ता कारक एकवचन में ए की जगह पालि में ओ प्रत्यय जोड़ा जाता है।

४—ऋ, ॠ, लृ-ए-ओ-श-ष-विसर्ग व अघोष, ह् जिव्हामूलक इन दस ध्वनियों का लोप हो जाता है।

५—ध्वनि व रूप दोनों ही दृष्टियों से पालि में तत्कालीन कई बोलियों के तत्त्व हैं, ऐसा ज्ञात होता है।

६—पालि में तद्भव शब्दों का प्रयोग ही अधिक है। इसके बाद तत्सम व देश्य शब्दों का ही प्रयोग है। विदेशी शब्दों की संख्या इसमें कम हैं।

७—द्विवचन का प्रयोग नाम व धातु दोनों रूपों में नहीं है।

८—व्यंजनान्त प्रतिपादित बहुत कम रह रहे हैं।

**पालि का वाङ्मय**—पालि में साम्प्रदायिक ग्रन्थ जैसे त्रिपिटक, विनयपिटक, सूत्रपिटक, अभिधम्मपिटक, साम्प्रदायिकेतर ग्रन्थों में मिलिन्दपाहो, दीपवंश इत्यादि, छन्दशास्त्र में कात्यायन व्याकरण इत्यादि तो लिखे गये परन्तु संस्कृत व अन्य भाषाओं की तरह सर्वांगपूर्ण ग्रन्थ नहीं लिखे गये हैं।

वर्तमान पालि वाङ्मय को चार भागों में बाँटा जा सकता है।

(अ) चौरासी हजार धर्मस्कंधों के रूप में इसका प्रथम वर्गीकरण हुआ किन्तु प्रयोग में नहीं होता है।

(ब) दूसरा वर्गीकरण नव अंगों में किया जाता है—

(१) सुत्त (२) गेय्य (३) वेय्याकरण (४) गाथा (५) उदान (६) इति उतक (७) जातक (८) अब्भुतधम्म (९) वेदल्ल।

(स) बुद्ध के सम्पूर्ण उपदेशों को पाँच निकायों में बाँट दिया है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) दीघनिकाय (२) मज्झिमनिकाय, (३) संयुत्तनिकाय, (४) अंगुत्तरनिकाय, (५) खुद्दकनिकाय।

(द) पालि या पिटक साहित्य या अनुपालि व अनुपिटक साहित्य—ये दो स्थूल विभाग किये गये हैं।

## २. पैशाची

पैशाची एक बहुत प्राचीन प्राकृत है। इसकी गणना पालि अर्धमागधी व शिलालेखों की प्राकृतों के साथ की जाती है। खरोष्ठी शिलालेखों व कुवलयमाला में पैशाची की विशेषताएँ देखने को मिलती हैं।

पैशाची की प्रकृति शौरसेनी है। मार्कण्डेय ने पैशाची भाषा को कैकय, शौरसेन और पांचाल इन तीन भेदों में विभक्त किया है। डॉ० सर जार्ज ग्रियर्सन के अनुसार पैशाची का आदिम स्थान उत्तर पश्चिम पंजाब व अफगानिस्तान प्रान्त है। पंजाब, सिन्ध, बिलोचिस्तान, काश्मीर की भाषाओं पर इसका प्रभाव आज भी लक्षित होता है।

इस समय पैशाची भाषा का उदाहरण 'प्राकृत प्रकाश', आचार्य हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण, षड्भाषाचन्द्रिका, प्राकृत-सर्वस्व आदि प्राकृत व्याकरणों में तथा हेमचन्द्र के कुमारपालचरित्र व काव्यानुशासन में एवं एक-दो षड्भाषा-चन्द्रिका में प्राप्य हैं। प्रथम युग की पैशाची भाषा का कोई निदर्शन साहित्य में नहीं मिलता है। गुणाढ्य की बृहत्कथा प्रथम शताब्दी की रचना है परन्तु वर्तमान में उपलब्ध नहीं है। आजकल पैशाची के जो उदाहरण मिलते हैं, वह मध्य युग की पैशाची भाषा के हैं। मध्य युग की यह पैशाची भाषा खिस्त की द्वितीय शताब्दी से पाँचवीं शताब्दी पर्यन्त प्रचलित थी।

**लक्षण**—(१) पैशाची शब्दों के आदि में न रहने पर वर्गों के तृतीय व चतुर्थ वर्णों के स्थान पर उसी वर्ग के क्रमशः प्रथम व द्वितीय वर्ग हो जाते हैं[1] जैसे गकनं < गगनम्, ग के स्थान पर क

(२) ज्ञ, न्य व ण्य के स्थान पर ञ्ञ होता है प्रज्ञा=पञ्ञा, पुण्य=पुञ्ञ

(३) ण व न दोनों के स्थान पर 'न' होता है गुण=गुन, कनक=कनक

(४) त व द के स्थान पर 'त' ही होता है—शत=सत, मदन=पतन, देव=तेय

(५) अकारान्त शब्द की पंचमी का एकवचन आतो व आदु होता है जैसे—जिनातों—जिनातु

(६) भविष्य काल के स्सि के बदले एय्य होता है।

(७) शौरसेनी के दि व दे प्रत्ययों की जगह ति व ते होता है। जैसे—रमति, रमते

## ३. चूलिका पैशाची

चूलिका पैशाची, पैशाची का एक भेद है। इसका सम्बन्ध काशगर से माना जाय तो अनुचित नहीं होगा। उस प्रदेश के समीपवर्ती चीनी तुर्किस्तान में मिले हुए पट्टिका लेखों में ऐसी विशेषताएँ पायी जाती हैं। इसके लक्षण आचार्य हेमचन्द्र ने अपने प्राकृत व्याकरण व लक्ष्मीधर ने षड्भाषाचन्द्रिका में दिये हैं। हेमचन्द्र के कुमारपालचरित्र व काव्यानुशासन में इस भाषा के निर्देश हैं। आचार्य हेमचन्द्र ने अपने 'अभिधानचिन्तामणि' नामक संस्कृत कोष ग्रन्थ में पैशाची के साथ ही उसका उल्लेख किया है।

**लक्षण**—(१) चूलिका पैशाची में र के स्थान पर विकल्प से ल होता है। गौरी=गोली, चरण=चलण, राजा=लाजा।

(२) इसमें पैशाची के समान वर्ग के तृतीय व चतुर्थ वर्णों के स्थान पर प्रथम व द्वितीय वर्ण होता है।

| | |
|---|---|
| नगः=नको | ग के स्थान पर क |
| झर=छलो | झ के स्थान पर छ व र के स्थान पर ल |
| ठक्का=ठक्का | ठ का ठ शब्द |

---

१. अभिनव प्राकृत व्याकरण, पृ० ४४४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(३) चूलिका पैशाची में आदि अक्षरों में उक्त नियम लागू नहीं होता, जैसे—

| | |
|---|---|
| गतिः=गती | ग का क नहीं हुआ |
| धर्म=धम्मो | ध के स्थान पर थ नहीं हुआ |
| घन=घनो | घ के स्थान पर ख नहीं हुआ। |

## ४. अर्धमागधी

साधारणतः अर्द्धमागधी शब्द की व्युत्पत्ति 'अर्द्ध मागध्याः' अर्थात् जिसका अर्धांश मागधी का हो, वह भाषा अर्द्धमागधी कहलायेगी, परन्तु जैन सूत्र ग्रन्थों की भाषा में उक्त युक्ति सम्यक् प्रकार से घटित नहीं होती, तीर्थंकर या भगवान महावीर इत्यादि अपना धर्मोपदेश अर्द्धमागधी में देते थे।[1] और यह शान्ति, आनन्द व सुखदायी भाषा आर्य-अनार्य, द्विपद, चतुष्पद, मृग, पशु-पक्षी और सरीसृपों के लिए अपनी बोली में परिणत हो जाती थी। ओववाइय-सूत्र से उक्त कथन की पुष्टि हो जाती है। इसका मूल उत्पति स्थान पश्चिम मगध व शूरसेन (मथुरा) का मध्यवर्ती प्रदेश है। प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव अयोध्या के निवासी थे, अतः अयोध्या में ही इस भाषा की उत्पत्ति मानी जाती है। प्रदेश की दृष्टि से अनेक विचारक इसे काशी-कौशल की भाषा भी मानते हैं।

सर आ० जी० भण्डारकर अर्द्धमागधी का उत्पत्ति समय ख्रितीय द्वितीय शताब्दी मानते हैं। इनके मतानुसार कोई भी साहित्यिक प्राकृत भाषा ख्रिस्त की प्रथम व द्वितीय शताब्दी से पहले की नहीं है। इसका अनुसरण कर डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी ने अपनी पुस्तक में अर्द्धमागधी का समय ख्रिस्तीय तृतीय शताब्दी स्थिर कर दिया है।

(अ) हार्नले ने समस्त प्राकृत बोलियों[2] को दो भागों में बाँटा है। एक वर्ग को शोरसेनी प्राकृत व दूसरे वर्ग को मागधी प्राकृत कहा है।

(ब) ग्रियर्सन के अनुसार शनैः-शनैः ये आपस में मिलीं और इनसे तीसरी प्राकृत उत्पन्न हुई, जिसे अर्द्ध मागधी कहा गया है।

(स) मार्कण्डेय ने इस भाषा के विषय में कहा है "शौरसेन्या अइरत्वादिय मेवार्धमागधी[3] अर्थात् शौरसेनी के निकट होने के कारण मागधी ही अर्द्धमागधी है।"

**लक्षण**—(अ) वर्ण सम्बन्धी दो स्वरों के मध्य के मध्यवर्ती असंयुक्त क् के स्थान में सर्वत्र ग और अनेक स्थलों में त और य् पाये जाते हैं।

प्रकल्प=पगप्प, आकाश=आगास, निषेधक=णिसेवग

(ब) दो स्वरों के बीच का असंयुक्त य प्रायः स्थिर रहता है व कहीं-कहीं त और य भी पाये जाते हैं। जैसे—आगम-आगम। ग ज्यों का त्यों स्थिर है। आगमणं<आगमन; ग को छोड़ न का ण हुआ।

(स) दो स्वरों के बीच आने वाले असंयुक्त च और ज के स्थान पर त् और य ही होता है णारात<नाराच पावतण<प्रवचन इत्यादि; पूजा=पूता, पूया इत्यादि।

(द) दो स्वरों के मध्यवर्ती प् के स्थान पर व् होता है जैसे वायव=वायव, प्रिय=पिय, इन्द्रिय=इंदिय

(य) अर्द्धमागधी के गद्य व पद्य की भाषा के रूपों में अन्तर है। स० प्रथमा एकवचन के स्थान पर मागधी की तरह ए प्रयोग होता है और प्रायः पद्य में शौरसैनी के समान 'ओ' का प्रयोग है।

---

१. भगवं च ण अहमाहिए भाषाए धम्ममाइक्खइ। समवायागं सूत्र, पृ० ६०

२. कम्परेटिव ग्रामर, भूमिका पृ० १७

३. प्राकृत सर्वस्व, पृ० १०३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(र) दंत्य ध्वनियाँ मूर्द्धन्य हो गयी है जैसे स्थित=ठिप, कृत्वा=कट्टु

(ल) अर्द्धमागधी में ऐसे शब्द प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं जिनका प्रायः महाराष्ट्री में अभाव है जैसे अणुवीति, आधवेत्त, आबीकम्म, कण्हुइ, पोरेवच्च, वक्क, विउस इत्यादि।

## ५. जैन महाराष्ट्री

अर्द्धमागधी के आगम ग्रन्थों के अतिरिक्त चारित्र कथा, दर्शन, तर्क, ज्योतिष, भूगोल आदि विषयक प्राकृत का विशाल साहित्य है। इस साहित्य की भाषा को वैयाकरणों ने जैन महाराष्ट्री नाम दिया है, इसमें महाराष्ट्री के बहुत लक्षण पाये जाते हैं, फिर भी अर्द्धमागधी का बहुत कुछ प्रभाव देखा जाता है।

जैन महाराष्ट्री के कतिपय ग्रन्थ प्राचीन है। यह द्वितीय स्तर के प्रथम युग के प्राकृतों में स्थान पा सकती है। पयन्ना ग्रन्थ, निर्युक्तियाँ, पउमचरिउ, उपदेशमाला ग्रन्थ प्रथम युग की जैन महाराष्ट्री के उदाहरण हैं।

आगम ग्रन्थों पर रचे गये बृहत्कल्पभाष्य, व्यवहारसूत्रभाष्य, विशेषावश्यक भाष्य एवं निशीथ चूर्णी में इस भाषा का प्रयोग हुआ है, समराइच्चकहा, कुवलयमाला, वसुदेवहिण्डी, पउमचरिउ में भी इसी भाषा का प्रयोग है।

**लक्षण**—अर्द्धमागधी के अनेक लक्षण इसमें पाये जाते हैं—

(१) क के स्थान पर अनेक स्थान पर ग होता है।

(२) लुप्त व्यंजनों के स्थान पर य् होता है।

(३) शब्दों के आदि व मध्य में ण की जगह न अर्द्धमागधी की तरह होता है।

(४) अस धातु का सभी काल, वचन व पुरुषों में अर्धमागधी के समान आसी रूप पाया जाता है।

शेष नियम महाराष्ट्री प्राकृत के समान ही जैन महाराष्ट्री में लागू होते हैं।

## (६) शिलालेखी प्राकृत

शिलालेखी प्राकृत के प्राचीनतम रूप अशोक के शिलालेखों में संरक्षित है। इन शिलालेखों की दो लिपियाँ है—ब्राह्मी व खरोष्ठी। अशोक के शिलालेखों की संख्या लगभग ३० है। अशोक ने अपने लेख शिलाओं पर लिखवाये जो उस समय की प्रादेशिक भाषाओं में रचित हैं, इनको ३ भागों में बाँट सकते हैं—

(अ) पंजाब के शिलालेख—इसमें र का लोप नहीं देखा जाता।

(ब) पूर्व भारत के लेख—इनमें मागधी के सदृश र की जगह सर्वत्र ल होता है।

(स) पश्चिम भारत के शिलालेख—ये उज्जैन की उस भाषा से सम्बन्धित हैं जिनका मेल पालि भाषा से है। इनका समय खिृस्त पूर्व २५० वर्ष का है।

## (७) शौरसेनी प्राकृत

भारतीय आर्य भाषा से मध्य युग में जो नाना प्रादेशिक भाषाएं विकसित हुईं, उनका सामान्य नाम प्राकृत है। विद्वानों ने देश-भेद के कारण मागधी व शौरसेनी को ही प्राचीन माना है। अशोक के शिलालेखों में दोनों ही प्राकृतों के उल्लेख हैं। इस प्रकार ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में शौरसेनी के वर्तमान रहने के शिलालेखी प्रमाण उपलब्ध हैं।

शौरसेनी शूरसेन (ब्रजमण्डल-मथुरा) के आसपास की बोली थी और इसका विकास वहाँ की स्थानीय बोली से हुआ। मध्य देश संस्कृत का केन्द्र होने के कारण शौरसेनी उससे बहुत प्रभावित है, मौर्य काल में जैन संघ के प्रवास के कारण इसका प्रचार दक्षिणी भारत में भी हुआ। शौरसेनी के विषय में विद्वानों की मान्यताएँ इस प्रकार हैं :—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) आचार्य भरत[1] के अनुसार नाटकों की बोलचाल में शौरसेनी का आश्रय लेना चाहिए।

(२) हेमचन्द्र ने आर्ष प्राकृत के बाद शौरसेनी का ही उल्लेख किया है बाद में मागधी व पैशाची का किया है।

(३) मार्कण्डेय[2] ने शौरसेनी से ही प्राच्या का उद्भव बताया गया है।

(४) पिशेल के अनुसार बोलचाल की जो भाषाएँ प्रयोग में लायी जाती हैं, उनमें शौरसेनी का प्रथम उल्लेख किया है।

इसी तरह मृच्छकटिक, मुद्राराक्षस के पद्य भाग में व कर्पूरमंजरी में भी शौरसेनी के उल्लेख है जो प्राचीनता पर प्रर्याप्त प्रकाश डालते हैं।

अश्वघोष के नाटकों में जिस शौरसेनी के उदाहरण मिलते हैं वह अशोक के समसामयिक कही जाती है। भास के नाटकों की शौरसेनी का समय सम्भवतः ख्रिस्त की प्रथम या द्वितीय शताब्दी मानना उचित प्रतीत होता है।

**लक्षण**:—(१) ऋ ध्वनि शब्दारम्भ में आने पर उसका परिवर्तन इ, अ, उ में हो जाता है जैसे ऋद्धि=ईडिह, कट्टु=कत्वा, पृथिवि=पुढवि इत्यादि।

(२) शब्द के तीसरे वर्ण का प्रयोग होता है त के स्थान पर द एवं थ के स्थान पर घ का प्रयोग होता है जैसे —चदि=चेति, वाघ=वाथ।

(३) षटखण्डागम में कहीं-कहीं त का य व यथावत रूप में मिलते हैं। जैसे—रहित=रहिये, अक्षातीत=अक्खातीदो, वीयराग=वीतराग।

(४) जैन शौरसेनी में अर्द्ध मागधी की तरह क का ग होता है। जैसे—वेदक=वेदग एवं स्वक=सग।

(५) शौरसेनी में मध्यवर्ती क, ग, च, ज, त, द, व, प का लोप विकल्प से हो जाता है जैसे—गइ=गति, सकलम्=सयलं, वचनैः=वयणेहि

(६) रूपों की दृष्टि से कुछ बातों में संस्कृत की ओर झुकी हुई है, जो मध्य देश में रहने का प्रभाव है, किन्तु साथ ही महाराष्ट्री से भी काफी साम्य है।

(७) त्वा प्रत्यय के स्थान पर इण, इण वत्ता होते हैं यथा परित्वा=पढिअ, पढिइण, पढिता इत्यादि।

## ८. मागधी

मागधी के सर्वप्राचीन उल्लेख अशोक साम्राज्य के उत्तर व पूर्व भागों के खालसी, मिरट, बराबर, रामगढ़, जागेढ़ आदि-अशोक के शिलालेखों में पाये जाते हैं। इसके बाद नाटकीय प्राकृत में उदाहरण मिलते हैं। वररुचि के प्राकृतप्रकाश, चण्ड के प्राकृतलक्षण, हेमचन्द्र के सिद्धहेमचन्द्र, क्रमदिश्वर के संक्षिप्तसार में मागधी के उल्लेख हैं।

मगध देश ही मागधी का उत्पत्ति स्थान है, मगध की सीमा के बाहर जो मागधी के निर्देशन पाये जाते हैं, उसका कारण यही है कि मागधी भाषा राजभाषा होने के कारण मगध के बाहर इसका प्रचार हुआ है।

अशोक के शिलालेखों व अश्वघोष के नाटकों की भाषा प्रथम युग की मागधी भाषा के निर्देशन की है, परवर्ती-काल के अन्य नाटकों व प्राकृत व्याकरणों की मागधी मध्ययुग की मागधी भाषा के उदाहरण है।

(१) भरत के नाट्यशास्त्र में मागधी भाषा का उल्लेख है।

---

१. नाट्यशास्त्र, अध्याय १७

२. प्राकृत सर्वस्व।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(२) मार्कण्डेय द्वारा अपने प्राकृतसर्वस्व में अन्तपुर निवासी, सुरंग खोदने वाले, कलवार, अश्वपालक, विपत्ति में नायक के अतिरिक्त भिक्षु क्षपणक आदि भी इस भाषा का प्रयोग करते हैं।

**लक्षण**:—(१) र के स्थान पर सर्वत्र ल होता है यथा नर=नल, कर=कल

(२) ष, श, व स के स्थान पर सर्वत्र श तालव्य ही होता है। जैसे—पुरुष=पुलिश, सारस=शालश इत्यादि।

(३) संयुक्त ष और स के स्थान पर दन्त्य सकार होता है जैसे—शुष्क=शुस्क, कष्ट=कस्ट, स्खलति=स्खलदि इत्यादि।

(४) क्ष की जगह स्क होता है जैसे—राक्षस=लस्कस इत्यादि।

(५) अकारान्त पुंल्लिग शब्द प्रथमा एकवचन में ए होता है यथा—जिन=यिणे, पुरुष=पुलिशे

(६) अस्मत् शब्द के एकवचन व बहुवचन का रूप हो जाता है।

(७) इसमें र का सर्वत्र ल हो जाता है यथा—राजा=लाजा

(८) मागधी में ज, घ, और य के स्थान में य आदेश होता है।

(अ) जनपद=जणवेद ज के स्थान पर य व प के स्थान पर व हुआ है।

(ब) जानाति=याणादि ज के स्थान पर य व ण को त हुआ है।

(९) मागधी में प्रथम, चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी विभक्ति में ही अन्तर पड़ता है।

## ९. महाराष्ट्री

प्राकृत काव्य व गीतों की भाषा को महाराष्ट्री कहा जाता है। सेतुबन्ध, गाथा सप्तशती, कुमारपाल-चरित ग्रन्थों में इस भाषा के उदाहरण पाये जाते हैं। गाथाओं में महाराष्ट्री प्राकृत ने इतनी प्रसिद्धि प्राप्त की कि नाटक के पद्यों में भी महाराष्ट्री बोले जाने का रिवाज सा बन गया। यही कारण था कि कालिदास से लेकर सभी नाटकों में इसका व्यवहार हो गया।

डॉ० हार्नले का मत है कि महाराष्ट्री भाषा महाराष्ट्र देश में ही उत्पन्न नहीं हुई। वे मानते हैं कि महाराष्ट्री का अर्थ विशाल राष्ट्र की भाषा से है। इसलिए राजपूताना व मध्यप्रदेश इसी के अन्तर्गत हैं, इसीलिए महाराष्ट्री को मुख्य प्राकृत कहा गया है। ग्रियर्सन के मत में आधुनिक मराठी की जन्मदायिनी यही भाषा है। अतः यह बात निस्सन्देह कही जा सकती है कि महाराष्ट्री का उत्पत्ति स्थान महाराष्ट्र ही है।

आचार्य हेमचन्द्र ने अपने व्याकरण में महाराष्ट्री को ही प्राकृत नाम दिया है व इसकी प्रकृति संस्कृत कही है। डॉ० मनमोहन घोष इसे शौरसेनी के बाद की शाखा मानते हैं। इसी तरह चण्ड, लक्ष्मीधर, मार्कण्डेय आदि वैयाकरणों ने भी साधारण रूप से इसकी प्रकृति संस्कृति ही कही है।

महाराष्ट्री प्राकृत साहित्य की दृष्टि से बहुत धनी है। हाल की गाथा सतसई, रावणवहो (प्रवरसेन), जयवल्लभ का वज्जालग्ग इसकी अमर कृतियाँ हैं। श्वेताम्बर जैनियों के भी इसमें कुछ ग्रन्थ भी लिखे गये हैं। इस पर अर्धमागधी का भी प्रभाव है।

**लक्षण**—(१) अनेक जगह भिन्न स्वरों के स्थान में भिन्न-भिन्न स्वर होते हैं यथा समृद्धि=सामिद्धि, ईषत=ईसि, हर=हीर।

(२) इसमें दो स्वरों के बीच आने वाले अल्प प्राण स्पर्श (क, त, प, ग, द, व, इत्यादि) प्रायः लुप्त हो गये हैं। जैसे—प्राकृत=पाउअ, गच्छति=गच्छइ

(३) उष्म ध्वनियाँ स व श का केवल र रह जाता है जैसे—तस्य=ताह, पाषाण=पाहाण।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(४) ऐ का प्रयोग महाराष्ट्री में नहीं होता। उसकी जगह सामान्यतः ह एवं विशेषण अइ होता है जैसे शैल=सैल, ऐरावण=एरावण, सैन्य=सैण्ण, दैन्य=देइण्ण।

(५) कितने ही शब्दों के प्रयोगानुसार पहले, दूसरे व तीसरे वर्ण पर अनुसार का आगम होता है। अश्रु=असुं, अंसु, त्रस्कम=तसं=तसं आदि।

(६) आदि के स्थान पर ज होता।

(७) अनेक स्थानों पर र का ल होता है।

(८) ष्प और स्प के स्थान पर फ आदेश होता है।

(९) अकारान्त पुल्लिग एकवचन ओ प्रत्यय होता है, पंचमी से एकवचन में तो, ओ, उ, हि और विभक्ति-चिह्न का लोप भी होता है व पंचनी बहुवचन में हिन्तों व सुन्तों प्रत्यय जोड़े जा सकते हैं।

(१०) भविष्यत्काल के प्रत्ययों के पहले हि होता है।

(११) वर्तमान, भविष्य, भूत व आज्ञार्थक प्रत्ययों के स्थान में ज्ज और ज्वा प्रत्यय भी होते हैं।

(१२) ति व ते प्रत्ययों में त का लोप होता है।

(१३) भाव कर्म में इअ और इज्ज प्रत्यय होते हैं।

□

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org